

नींव की ईंट

मानवता की कोमल अनुभूतियों
से पूर्ण, कलात्मक १४ कहानियाँ

लेखिका—

श्रीमती चन्द्रवती ऋषभसैन जैन
प्रधान सम्पादिका—'दीदी'

प्रकाशक—

जीवन-कला-मन्दिर (साहित्य-विभाग)

सहारनपुर यू० पी०

संस्करण

अगस्त १९४२ : १०००

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—आशाराम खत्रि

रॉयल प्रिंटिङ्ग प्रेस

सहारनपुर

कहाँ क्या है ?

बस और क्या कहूँ ?

शैशव-काल से ही मैं नहीं जानती कैसे मुझ में एक संस्कार है, जीवन को आँख खोल कर देखने का। देखते-देखते जब भीतर भारी-सा एक संग्रह हो चला तो घर-गृहस्थी के सामान की तरह, उसे ठिकाने लगाने, व्यवस्थित करने की जरूरत पड़ी। मेरी क़लम का यह कार्य उसी व्यवस्था का रूप है और संक्षेप में मेरे साहित्य का मनोविज्ञान और इतिहास यही है।

इन कहानियों में कल्पना के करिश्मों का अभाव है। ये सब मेरे या मेरे साथियों के जीवन की घटनाएँ हैं। इनके पात्र मेरी 'सृष्टि' नहीं हैं, मेरे 'कामरेड' हैं। वे मेरे साथ हँसे, खेले और रोये, और मैं उन में और वे मुझ में बराबर डूबे रहे। लिखते समय मुझे कभी नहीं लगा

कि मैं लिख रही हूँ। सन्दलसिंह से मैंने बातें कीं, चञ्चल से चुहल और अञ्जनहारी, ललिता एवं भींकती के साथ मैं रोई।

मेरे पास साहित्य का 'मीटर' नहीं है। मैं इन का साहित्यिक मूल्य जानती भी नहीं। किसी 'मूल्यवान भेंट' के रूप में, अभिमान के साथ, इन्हें लिये, इठलाते, मैंने साहित्य-भारती के मन्दिर में प्रवेश भी नहीं किया।

यह प्रेस का युग है। इस में सब कुछ छप जाता है। जानती हूँ, छपाई और मूल्य का कोई सम्बन्ध नहीं है। विद्वान आलोचक और उन से भी आगे समय, मूल्य का सही निर्धारण करते हैं।

छिपाऊँगी नहीं, मुझ में प्रसंशा की चाह है। इन की कोई प्रसंशा करे तो मैं सुखी होऊँ, पर आलोचना के आलोक में इन की अपात्रता ही सिद्ध हो तो मैं दुख न मानूं, क्यों कि जानती हूँ, समय के बहते प्रवाह पर छाप लगाने की क्षमता मुझ में नहीं है।

फिर भी यह प्रकाशन एक विडम्बना ही समझी जाए तो इस का भार हिन्दी के यशस्वी पत्रकार, साहित्य-बन्धु श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह जी के हिस्से आएगा, जिन्होंने दर्जनों लम्बे-लम्बे प्रशंसा भरे पत्र लिख कर, बराबर मेरी हिम्मत बढ़ाई। हिन्दी के दूसरे अनेक प्रतिष्ठित पत्र सम्पादकों और विशेषतः वैज्ञानिक कहानियों के लेखक

और श्रेष्ठ समालोचक श्री प्रो० व्रजमोहन गुप्त एम० ए० का स्नेह-सहारा भी इस में भागीदार है।

अपने भाई प्रभाकर जी के बारे में यहाँ कुछ कहने के लिये शब्दों की एक वेगवती धारा भीतर उमड़ी है, पर वे मानवता के मूक साधक हैं और नहीं चाहते कि मैं कुछ कहूँ। वे भारतमाता के उस कोटि के पुत्रों में हैं, जिन्हें पाकर किसी भी बहिन को फिर कुछ और पाने की इच्छा नहीं रहती।

बस और क्या कहूँ ?

शान्ति भवन, सहारनपुर
१ अगस्त १९४२ —चन्द्रवती ऋषभसैन जैन